प्राचीन सभ्यता के विकास एवं विनाश में जलवायु का योगदानः पुरातात्विक अवशेषों पर आधारित एक अध्ययन

■ अनिरुद्ध सिंह गौर

सारांश

जलवायु परिवर्तन एक निरंतर प्रक्रिया है और इसी सिद्धांत पर आधारित हैं दैनिक एवं वार्षिक परिवर्तन । लेकिन यह परिवर्तन पृथ्वी पर रहने वाले जीव–जन्तु जिनमें मनुष्य भी शामिल है सहजता से अपना लिया है और इसके लिये पूरी तरह से तैयार रहता है। परन्तु विकट समस्या है दीर्घकालिक जलवायु परिवर्तनों की, उदाहरण के लिये यदि किसी क्षेत्र में एक या अधिक वर्षों तक सूखा पड़े या बाढ़ आती रहे तो वहां का जीवन अस्त–व्यस्त हो जाता है और बड़े पैमाने पर स्थानान्तरण होना प्रारम्भ हो जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि उपयुक्त स्थल पर भी अधिक लोगों के लिये भोजन–पानी का दबाव बढ़ता है और वहां भी अव्यवस्था फैलना प्रारम्भ हो जाती है। हम जब भी पुरातात्विक स्थलों का अध्ययन करते हैं तो ऐसे उदाहरण देखने को मिलते हैं।.

राष्ट्रीय समुद्र विज्ञान संस्थान में स्थित समुद्री पुरातत्व केन्द्र द्वारा विगत दो दशकों से भारत के विभिन्न भागों में समुद्री पुरातात्विक खोजें की गई हैं। इनमें सबसे प्रसिद्ध है द्वारका एवं पुम्पुहार में अन्तर्जलीय सर्वेक्षण। इनके अलावा महाबलीपुरम से जलमग्न पुरातात्विक अवशेष मिले हैं। प्रस्तुत लेख में भारत में की गई समुद्री पुरातात्विक खोजों की विस्तृत जानकारी दी गई है एवं पुरातात्विक अवशेषों के आधार पर पुराजलवायु परिवर्तन पर विस्तृत चर्चा की गई है।

परिचय

प्राचीन भारतीय एवं विदेशी साहित्यों में किसी मानव संस्कृति के विनाश के विवरण मिलते हैं और उसके प्रमुख कारण के रूप में पृथ्वी पर आयी भयंकर प्रलय का उल्लेख किया गया है। कहा जाता है कि पृथ्वी पर इतना अधिक पानी बढ़ गया था कि आदि मानव को हिमालय में शरण लेनी पड़ी थी। इसी तरह पश्चिमी साहित्य में अटलांटिस नामक महाद्वीप .जिस पर एक विकसित सभ्यता मौजूद थी, के समुद्र में डूब जाने के उल्लेख मिलते हैं । भारत के प्रसिद्ध तमिल साहित्य में कुमरी कन्दन नामक महाद्वीप के जलमग्न होने की कथा का विवरण मिलता है। कहा जाता है कि सम्पूर्ण विश्व की मानव सभ्यता इसी महाद्वीप से स्थानान्तरित हुई । उत्तरवर्ती संस्कृत साहित्य में महाभारत कालीन द्वारका नगरी के समुद्र में डूब जाने की कहानी का कई बार उल्लेख मिलता है। इसी तरह से संगम कालीन साहित्य में चोल राजाओं की पत्तन राजधानी पुम्पुहार नामक नगर को समुद्र द्वारा नष्ट किये जाने की कथा का विवरण मिलता है।

होलोसीन काल का प्रारम्भ हिमयुग के अन्त का द्योतक है और इसी समय मानव ने गहरी कन्दराओं से बाहर निकलकर मैदानी इलाकों की नदियों एवं झीलों के किनारों पर अपना आवास बनाना प्रारम्भ किया जिसके फलस्वरूप उन्हें उपजाऊ जमीन जिनमें प्राकृतिक रूप से उत्पन्न अनाजों की उपलब्धता एवं विभिन्न प्रकार के पशु जिनमें गाय, बैल, भैंस, बकरी एवं कुत्ता आदि से आहार एवं दिन प्रतिदिन के कार्यों में मदद मिलने लगी। एक बड़े समूह में रहना प्रारम्भ किया और भारतीय महाद्वीप में प्रारम्भिक गांवों की स्थापना आज से लगभग 8000 वर्ष पूर्व पूर्वी उत्तर प्रदेश एवं बलूचिस्तान क्षेत्र में हुई। पुरातत्व में इस काल को नवपाषाण काल के नाम से जानते हैं। पूर्वी उत्तर प्रदेश के प्रारम्भिक काल में गोलाकार झोपड़ पट्टी के घर बनाये जाते थे जबकि बलूचिस्तान क्षेत्र में चौकोर एवं आयताकार कमरों के घर बनाये जाते थे। इस काल में जंगली

चावल जैसे खाद्यानों का भण्डारीकरण भी प्रारम्भ हुआ था। इसी समय से कुत्ता मनुष्य का सबसे वफादार जानवर बन गया क्योंकि इसके अवशेष हमें मनुष्य के शवाधान के साथ गड़े हुये मिले हैं । जलवायु की दृष्टि से यह काल अधिक वर्षा का रहा है। लगभग 5000 वर्ष पूर्व तक नवपाषाण काल चलता रहा और इसके पश्चात् बलूचिस्तान क्षेत्र में कांस्य युग ने प्रवेश किया और इस समय तक वर्षा मौसमी रूप से स्थायी हो चुकी थी और पहले की अपेक्षा कम भी हो चुकी थी । इसी समय में नियमित खेती होना भी प्रारम्भ हो चुका था और इसके अत्यधिक विकसित अवशेष कालीबंगा नामक पुरास्थल से प्राप्त हुये हैं । इन अवशेषों के अनुसार एक ही समय में एक खेत में दो फसलें पैदा करने का प्रचलन प्रारम्भ हो चुका था जो कि आज भी उत्तर भारत के कई इलाकों में प्रचलित है ।

बेट द्वारका

बेट द्वारका द्वीप कच्छ खाड़ी के मुहाने पर स्थित है । सिन्धु सभ्यता काल से ही यह एक मध्यस्थ मार्ग की भूमिका निभाता रहा है। उत्तर–पश्चिम में कच्छ और सिन्ध तथा दक्षिण–पूर्व में सौराष्ट्र एवं काठियावाड़ के मध्य व्यापारिक संबंध बनाने में इनकी मध्यस्थ की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। पुरातात्विक सर्वेक्षणों से विदित हुआ कि द्वीप के चारों ओर उपलब्ध समुद्री संसाधन ने प्रारम्भिक मानव को यहां पर आवास बनाने के लिये प्रेरित किया होगा। समय परिवर्तन के साथ यह द्वीप अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक केन्द्र बन गया था। सन् 1983 से पुरातात्विक सर्वेक्षणों के दौरान अन्तर्ज्वारीय क्षेत्र से काफी मात्रा में पुरातात्विक अवशेष मिले हैं । सांस्कृतिक अनुक्रमण एवं मानव और समुद्र सम्बन्धों के विषय में जानकारी के लिये कुछ स्थलों पर उत्खनन किया गया है।

बेट द्वारका में उत्खनन के समय यह देखा गया कि प्राचीनतम आवास स्तर वर्तमान समुद्र की उच्च जल रेखा से नीचे है। यह प्रमाण समुद्र स्तर में परिवर्तन का सूचक है। प्रस्तुत लेख में 2000 वर्ष पूर्व कच्छ की खाड़ी में समुद्र स्तर में हुए परिवर्तन पर प्रकाश डाला गया है।

उत्खनन के समय मे 3 खाइयों में (बीडीके 1, 2 और 5) प्राचीनतम् पुरातात्विक अवशेष वर्तमान समुद्र स्तर से नीचे पाये गये हैं । इन पुरातात्विक अवशेषों की तिथियां 2300 से 1620 बर्ष के मध्य हैं । बीडीके 3 जो उपयुक्त स्थलों से 2–3 शताब्दियां अधिक प्राचीन है, वर्तमान समुद्र स्तर पर ही स्थित है। बीडीके 6 जो द्वीप का प्राचीनतम् पुरास्थल है, वर्तमान समुद्र स्तर से 4 मी ऊपर है । उपयुक्त प्रमाण समुद्र स्तर में निम्नलिखित परिवर्तन की ओर संकेत करते हैं।

1) लगभग 3500 वर्ष पूर्व समुद्र स्तर वर्तमान स्तर से 2–3 मी ऊपर था। यह तथ्य अन्य पुरातात्विक एवं भूगर्भीय साक्ष्यों से भी प्रमाणित हुआ है कि मध्य होलोसीन में समुद्र का स्तर वर्तमान स्तर से 2–6 मी ऊँचा था। उस समय बहुत से हडप्पा कालीन बन्दरगाह समुद्र तट पर स्थित थे जो वर्तमान में तट रेखा से काफी दूर हैं।

2) समुद्र स्तर में गिरावट का सिलसिला प्रारम्भ हुआ और लगभग 2700 वर्ष पूर्व समुद्र स्तर वर्तमान स्तर से करीब 1 मी नीचे पहुंच गया. 2100–2000 वर्ष पूर्व समुद्र स्तर उत्तरवर्ती होलोसीन के निम्नतम स्तर पर पहुंच गया। इसके समानान्तर प्रमाण पूर्वी तट पर स्थित ऐतिहासिक कालीन पुरास्थल अरिकामेडू से भी हैं। इस समय में बेट द्वारका की जनसंख्या मे काफी वृद्धि हुई और समुद्री संसाधनों का अभूतपूर्व दोहन हुआ। इसी समय में भूमध्य सागर से पोत यहां पर आते थे ।

3) आज से लगभग 1000 वर्ष पूर्व समुद्र का स्तर वर्तमान स्तर तक पहुंच गया क्योंकि मध्ययुगीन पुरास्थल वर्तमान समुद्र स्तर से 4 से 5 मी. की ऊँचाई पर स्थित है । पुरातात्विक अवशेष संकेत करते हैं कि इस समय में समुद्री गतिविधियों में कई गुना वृद्धि हुई ।

उपयुक्त पुरातात्विक एवं वैज्ञानिक तिथियों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि लगभग 2000 वर्ष पूर्व बेट द्वारका द्वीप के आसपास समुद्र का स्तर 2–3 मी नीचे था. यदि वर्तमान में बनाये गये मानचित्र में बेट द्वारका द्वीप के आसपास की पानी की समोच्च रेखाओं में 2 मी की रेखा को 2000 वर्ष पूर्व की तट रेखा बनायी जाये तो उत्तर पश्चिम क्षेत्र में काफी मात्रा में पानी जमीन से हट जायेगा। जबकि दक्षिण–पूर्व में द्वीप निम्न भाटे के समय में मुख्य भूमि से जुड़ जायेगा और द्वीप का क्षेत्रफल बढकर दुगुना हो जायेगा । इस द्वीप पर रहने वाले बुजुर्ग लोग कहते हैं कि प्राचीन समय में लोग बैलगाड़ी के साथ बेट द्वारका में पहुंचते थे । यह वक्तव्य वर्तमान खोजों से आंशिक रूप में सत्य प्रतीत होताहै।

पिंडारा

पिंडारा द्वारका से 30 किलोमीटर उत्तर–पूर्व में उत्तरी सौराष्ट्र तट पर कच्छ की खाड़ी में स्थित है। प्राचीन ग्रन्थों में इसे पिंडतारका के नाम से भी जानते हैं और 8वीं सदी में तीर्थस्थल के रूप में बहुत प्रसिद्ध था । पिंडारा के पश्चिम में बहुत बड़े क्षेत्र में फैला ओखा रण है। पिंडारा खुले समुद्र की लहरों से दूर एक बहुत ही सुरक्षित बन्दरगाह है । यहां से प्राप्त प्राचीनतम् अवशेष पुरा–पाषाण कालीन हैं । पिंडारा का पुरास्थल वर्तमान गांव से 3 किलोमीटर उत्तर में स्थित है । एक लघु पैमाने पर उत्खनन के समय में एमफोरा एवं एतिहासिक काल के मिट्टी के पात्रों के अवशेष मिले हैं। जो संकेत करते हैं कि ईस्वी की प्रारम्भिक सदियों में भूमध्य सागरीय देशों से इसके संबंध थे । सातवीं से दसवीं शताब्दियों के मध्य पिंडारा मंदिर स्थापत्य का प्रमुख केन्द्र था। पिंडारा समुद्री मोतियों के पकड़ने का भी एक प्रमुख केन्द्र था।

पिंडारा के अन्तर्ज्वारीय सर्वेक्षण के दौरान 100 वर्ग मीटर क्षेत्र में फैला एक मंदिर का परिसर मिला है जो वर्तमान में उच्च ज्वार रेखा से लगभग 300 मीटर समुद्र में स्थित है। उच्च ज्वार के समय यह पूर्णतया पानी में डूब जाता है और इसका अधिकतर भाग निम्न ज्वार के समय दिखाई देता है। यह मंदिर भगवान शिव को समर्पित था क्योंकि इसमें योनी के अवशेष मिले हैं ।. इस मंदिर के निर्माण में चूना पत्थर का प्रयोग किया गया। इस मंदिर का आकार संभवत: तट पर स्थित अन्य मंदिरों की तरह ही रहा होगा। तुलनात्मक अध्ययन से ज्ञात होता है कि इस मंदिर की तिथि 7 से 10वीं शताब्दी के मध्य रही होगी।

गुजरात तट से मंदिर के जलमग्न होने का यह पहला उदाहरण है । यद्यपि गुजरात की प्राचीन तट रेखायें निर्धारित करने पर काफी अनुसंधान हो चुका है लेकिन पिछले 1000 वर्ष के दौरान में हुए परिवर्तनों पर ज्यादा काम नहीं हुआ है. और इस दृष्टि से यह तथ्य बहुत ही महत्वपूर्ण हैं।

महाबलीपुरम

पुरातात्विक सर्वेक्षण तटीय मन्दिर से करीब 500 मीटर दूर समुद्र में किया गया। इस क्षेत्र में पानी की गहराई 6 से 15 मीटर तक और समुद्री तलहटी पर ऊँची–ऊँची ग्रेनाइट की चट्टानें एवं रेतीले भाग देखे जा सकते हैं। पुरातात्विक अवशेषों में दीवालें.जो 20 मीटर से ज्यादा लम्बी हैं। आयताकार एवं चौकोर आकार के पत्थर, चौकोर चबूतरे, सीढियां आदि मिलते हैं । अधिकतर अवशेष खण्डहर होकर काफी क्षेत्र में फैल गये हैं। इन अवशेषों के ऊपर समुद्री जमावों की एक मोटी पर्त देखी जा सकती है।

महाबलीपुरम का अर्न्तजलीय सर्वेक्षण बहुत ही उत्साहवर्द्धक रहा और जो अवशेष पानी के अन्दर से मिले वह वहां पर प्रचलित स्थानीय किवदंतियों में सचाई को प्रमाणित करते हैं । पांच विभिन्न स्थलों पर सर्वेक्षण से प्राप्त अवशेषों से यह कहा जा सकता है कि जो पांच मन्दिर डूबने की बात कही जाती है उसमें काफी सचाई है। अधिकतर संरचनायें प्राकृतिक पथरीले एवं ऊंचाई वाले समतल पर निर्मित हैं। पुरास्थल सं 1 से प्राप्त अवशेषों के आधार पर कहा जा सकता है कि यह एक बहुत बड़े परिसर का प्रमुख हिस्सा है । प्रमुख भाग पश्चिम की ओर है जो संभवतः संरचना का मुख्य भाग रहा होगा । इस क्षेत्र में अवशेषों के बिखराव के आधार पर यह कहा जा सकता है कि यह किसी बड़े मन्दिर का परिसर रहा होगा। पश्चिमी भाग में मन्दिर का गर्भगृह स्थित है जिसका मुख्य द्वार पूर्व की ओर खुलता होगा। मन्दिर के गर्भगृह में जाने के लिये दक्षिण की ओर से भी एक

छोटा रास्ता रहा होगा । गर्भगृह से पूर्व की ओर खुला क्षेत्र रहा होगा तथा फर्श पर तराशे पत्थर बिछाये गये थे जिनके अवशेष अभी भी देखे जा सकते हैं। अवशेषों के बिखराव के आधार पर यह कहा जा सकता है कि मन्दिर 75x 35 मीटर क्षेत्र में फैला हुआ था। इसी तरह की संरचना कुछ पुरास्थल सं. 5 की है जिससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वहां से प्राप्त अवशेषों में दो मन्दिर के परिसर रहे होंगे। स्थल सं. 3 और 4 निश्चित तौर पर प्राकृतिक पत्थरों की चट्टान हैं लेकिन इन्हें खदान के रूप में प्रयोग किये जाने के पुख्ता प्रमाण हैं। इस प्रकार उपयुक्त चर्चा के बाद कहा जा सकता है कि महाबलीपुरम के जलमग्न होने की बात सिर्फ काल्पनिक नहीं है। इन पत्थरों की संरचनाओं के अलावा यहां पर और कुछ भी नहीं मिला है जैसे मृदभाण्ड और सिक्के आदि जो इस तर्क को और पुख्ता करते हैं कि ये संरचनायें मुख्यतः धार्मिक स्थलों से संबंधित हैं न कि आवासीय स्थल। इसके बाद सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न उठता है कि इनका निर्माणकाल क्या होगा। जैसा कि प्रारम्भ में ही कहा गया है कि महाबलीपुरम में तमिल साहित्य में कोई उल्लेख नहीं मिलता है और स्थानीय किवदन्तियां भी इस पर कोई प्रकाश नहीं डालती हैं । तमिल साहित्य मे इसका उल्लेख न होने के कारण महाबलीपुरम के जलमग्न अवशेषों की तिथि संगम काल से बाद की है। मन्दिर निर्माण में प्रस्तर प्रयोग का प्रोत्साहन पल्लव राजवंश के राजा नरसिंह वर्मन के समय से हुआ और महाबलीपुरम में मन्दिर स्थापत्य कला की आधार शिला इसी राजवंश के समय डाली गयी थी जिनकी तिथियां 5 वीं से 8 वीं शताब्दी के बीच हैं। इस आधार पर महाबलीपुरम के जलमग्न अवशेष भी इसी काल के हैं। वर्तमान का तटीय मन्दिर का अगर उचित और समय पर संरक्षण न किया गया होता तो संभवतः आधा भाग समुद्र में जलमग्न हो गया होता। अतएव हम इस बात को यथार्थ रूप से कह सकते हैं कि जलमग्न संरचनाओं की तिथियां भी महाबलीपुरम में स्थित अन्य मन्दिरों के समकालीन हैं ।

तटीय अपरदन महाबलीपुरम की जलमग्न संरचनाओं को नष्ट करने का मूलभूत कारण रहा है । एक अध्ययन के अनुसार महाबलीपुरम क्षेत्र में 55 सेमी प्रतिवर्ष निक्षेपण हो रहा है । अगर निक्षेपण की दर पिछले 1500 वर्षों में यही रही होगी तो अब तक लगभग 800 मीटर निक्षेपण हो चुका है और वर्तमान में जो पत्थर की संरचनायें हैं वे 1500 वर्ष पूर्व जमीन पर रही होंगी । इसके अलावा जलस्तर परिवर्तन भी एक कारण रहा होगा लेकिन उसका कोई गम्भीर अध्ययन नहीं किया गया है। जहां तक भूकम्पन प्रश्न है तो उसके पिछले 1200 वर्षों में कोई प्रमाण नहीं मिले हैं क्योंकि भूकम्पन की वजह से कोई संरचनायें प्रभावित नही हुई हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि तटीय निक्षेपण ही महाबलीपुरम के अवशेषों को जलमग्न करने का प्रमुख कारण रहा है तथा थोड़ा योगदान समुद्र स्तर परिवर्तन का भी रहा होगा ।

महाबलीपुरम के अन्तर्जलीय सर्वेक्षण से प्राप्त अवशेषों से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि स्थानीय किवदन्तियों में आंशिक रूप में सच्चाई है जो महाबलीपुरम में किसी सम्पन्न नगर के जलमग्न होने की बात कहती है । जलमग्न संरचनायें संभवतः मन्दिर परिसरों के अवशेष हैं एवं आवासीय स्थल होने के कोई प्रमाण नहीं मिले हैं। तुलनात्मक पुरातात्विक अध्ययन से जलमग्न अवशेषों की तिथियां 5वीं से लेकर 8वीं शताब्दी के बीच आंकी जा सकती हैं । तटीय अपरदन महाबलीपुरम के जलमग्न करने का प्रमुख कारण रहा है. महाबलीपुरम का अन्तर्जलीय सर्वेक्षण भारतीय समुद्री पुरातात्विक इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना है क्योंकि यह एक पहला जलमग्न पुरास्थल है जहां से संदेह रहित अवशेष मिले हैं और उनकी व्याख्या संदेहास्पद नही है ।

निष्कर्ष

पुरास्थल कई तरह की वैज्ञानिक सूचनाओं के भंडार होते हैं और यह ऐसे प्रमाण हैं जो कई पहलुओं पर खरे उतरते हैं । किसी भी सभ्यता के विकास एवं विनाश में जलवायु का योगदान प्रमुख है । समुद्र स्तर में कमी होना या वृद्धि होना भी जलवायु परिवर्तन के परोक्ष साक्ष्य हैं । समुद्री पुरातात्विक अनुसंधानों से यह पूर्ण रूप से स्पष्ट हो जाता है कि पिछले 2000 वर्षों से तटरेखा में काफी परिवर्तन हुए हैं एवं कम से कम गुजरात तट पर स्थानीय रूप से दो बार समुद्र परिवर्तन के उदाहरण देखे जा सकते हैं । पहला परिवर्तन ईस्वी सदी के प्रारम्भ में जिसके उदाहरण बेट द्वारका से मिलते हैं तथा दूसरा लगभग 1000 वर्ष पूर्व जिनके अवशेष पिंडारा गुजरात तट से एवं महाबलीपुरम तमिलनाडु तट से प्रकाश में आये हैं ।

राष्ट्रीय समुद्र विज्ञान संस्थान,
दोना पावला, गोवा – 403 004